4. सूरदास

हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्ति–काल की सगुण–भक्ति धारा के अंतर्गत कृष्ण–भक्ति धारा के प्रख्यात महाकवि सूरदास जी का जन्म दिल्ली के निकट सीहीं नामक गाँव में सन 1478 ई.(संवत् 1535) में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ। बाल्यावस्था में ही वे अपने घर से विरक्त होकर निकल पड़े और सीहीं से लगभग चार–पाँच मील दूर किसी अन्य गाँव में तालाब के किनारे एक पीपल के वृक्ष के नीचे बस गए। यहाँ वे लगभग अठारह वर्ष की आयु तक रहे। वहाँ लोगों से उन्हें काफी प्यार मिला। उनका सुरीला कंठ बहुत मधुर था और यहाँ एकांत में बैठकर जब वे गाते थे तब उनका गाना सुनने के लिए वहाँ बहुत से लोग आते थे और ध्यान से सुनते थे। एक रात उन्होंने यह सोचकर कि यहाँ लोगों की माया–मोह से निकलकर मुझे भक्ति के लिए अन्य जगह जाना चाहिए, जहाँ शांति मिलें। अतः अपने वैराग्य भाव की रक्षा तथा माया से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने एक दिन व स्थान छोड़ दिया और वहाँ से चलकर मथुरा आए, जो भगवान कृष्ण का जन्म स्थान था। उन्हें माया–मोह से बचने के लिए वहाँ भी रहना उचित नहीं लगा और वहाँ से निकलकर वे मथुरा के बीच गऊघाट पर पहुँचे और वही यमुना के किनारे एकांत स्थान पर रहना प्रारंभ किया।

गऊघाट में रहकर सूरदास ने काव्य और संगीत का ज्ञान प्राप्त किया और शास्त्रों तथा पुराणों का अध्ययन भी किया। यहीं रहकर ब्रजभाषा पर इन्होंने अधिकार प्राप्त किया। यहाँ उनकी श्री वल्लभाचार्य से भेंट हुई। सूरदास जी ने उन्हें विनय के पद सुनाएँ लेकिन वे वल्लभाचार्य जी को रास नहीं आये, तब श्री वल्लभाचार्य जी ने भागवत पर गाने का उन्हें अनुरोध किया और उनके भागवत के पद सुनकर वल्लभाचार्य जी प्रभावित हुए। सूरदास ने उनसे पुष्टिमार्ग की दीक्षा ले ली। दीक्षा लेने से पूर्व सूरदास विनय और दैन्य भक्ति के पद गाते थे लेकिन वल्लभाचार्य के संपर्क में आने से इनके काव्य की धारा ही बदल गई। अब वे पुष्टीमार्ग की दीक्षा के पश्चात कृष्ण को अपना आराध्य मानकर उनके वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भक्ति का गान करने लगे। यहीं से वल्लभाचार्य जी को सूरदास ने अपना गुरु मान लिया और वे श्री वल्लभाचार्य जी के साथ गोवर्धन चले आये।

गोवर्धन आकर श्रीनाथजी की मूर्ति की सेवा में सूरदास मग्न रहने लगे। वहाँ आने के पश्चात सूरदास ने पारसोली को अपना निवास स्थान बनाया।

कहा जाता है कि यहीं पर इनका शेष जीवन व्यतीत हुआ। सूरदास ने श्री कृष्ण की बाल लीला, रासलीला, गोपी प्रेम आदि का मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण किया है। वात्सल्य वर्णन के बारे में तो कहा जाता है कि सूरदास ने वात्सल्य का कोना– कोना झाँका है। कृष्ण के बाल रूप तथा किशोर रूप के चित्र अंनूठे बन पड़े हैं। सूरदास ने कृष्ण के नर और नारायण दोनों रूपों की विविध लीलाओं का वर्णन किया है। सूरदास ने अधिकांश पदों की रचना यहीं पर की है। आष्ठछाप कवियों में इनका महत्वपूर्ण स्थान था। इस बात को लेकर सूरदास का अंत समय जब निकट आ गया था तब गोसाई विट्ठलनाथ ने कहा था कि, 'पुष्टिमार्ग का जहाज जा रहा है, जिसे जो लेना हो ले ले।' यहीं पर श्रीकृष्ण की सेवा करते–करते सन 1583 ई. (संवत् 1640) में पारसोली में इनका देहावसान हुआ। अपनी मृत्यु के समय 'खंजन नैन रूप रस माते' वाले दो पद गाकर उन्होंने सूचित किया था कि उनका मन और आत्मा पूर्ण रूप से राधा भाव में लीन है।

रचनाएँ– आधुनिक खोज के अनुसार सूरदास के चोबीस ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है। लेकिन इनमें से–

1) सूरसागर,
2) साहित्य लहरी
3) सूर सारावली आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

'सूरसागर' ही इनकी एकमात्र प्रामाणिक रचना मानी जाती है। इसमें ब्रजभाषा में लिखे लगभग 5000 पद संकलित हैं। जिनमें से 4 हजार से अधिक श्रीकृष्ण की ब्रज लीलाओं से संबंधित हैं तथा अन्य 1000 पदों में द्वारिका चरित्र, विनय–पद तथा विविध अवतारों का संक्षिप्त वर्णन है। यह एक गेय मुक्तक काव्य है, जिसमें भगवान की लीलाओं का विस्तार है। सूरदास ने इस रचना में श्रीकृष्ण के जीवन के कोमलतम अंशों पर असंख्य लीला के पद रचे हैं। जिसमें से भ्रमरगीत की कल्पना कृष्ण–भक्ति काव्य की मौलिक देन है। सूरदास के भाव चित्रण में वात्सल्य और शृंगार भाव को सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है। अचार्य रामचंद्र शुक्ल इस संबंध में लिखते हैं कि, "वात्सल्य के समान ही शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का इतना प्रचुर विस्तार और किसी कवि में नहीं मिलता। गोकुल में जबतक श्रीकृष्ण रहे तब तक उनका सारा जीवन ही संयोग पक्ष के अंतर्गत आता है। दानलीला, माखनलीला, चीरहरण लीला, रासलीला आदि न जाने कितनी लीलाओं पर सहस्त्रों पद भरे पड़े हैं।" ऐसा लगता है कि, शृंगार वर्णन के अंतर्गत तो संयोग और वियोग की दोनों भावनाओं की अत्यंत विस्तृत और अनूठी लहरें सूरसागर में उठ रही हैं। बालक की विविध चेष्टाओं, विनोदों, बालसुलभ ईर्ष्या, स्पर्धा, मातृहृदय की अभिलाषाओं, उत्कंठाओं आदि भावनाओं के वर्णन में सूरदास हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि ठहरते

हैं। 'सूरसागर' प्रेम का सागर है जिसमें सूरदास ने अपनी सूक्ष्म भाव भंगिमाओं से कृष्ण की संपूर्ण जीवन की लीलाओं को पदों में पिरोया है। इन पदों में वह क्षमता है कि सुननेवालों के सामने वे घटना का एक स्वतंत्र चित्र, एक स्वतंत्र भाव प्रस्तुत करते हैं। चित्रात्मकता, भावात्मकता, संगीतात्मकता, गेयात्मकता आदि गीति–शैली की सभी विशेषताएँ उनके पदों में मिलती हैं। सूर अंधे थे फिर वे जन्म से अंधे थे या बाद में हुए यह गौण बात है। लेकिन अंधे होकर भी कृष्ण के इतने भावभीने चित्रों को प्रस्तुत करना एक विशेष है। सूरदास के भाव जगत की कलात्मकता तथा रूप माधुर्य वर्णन का जादू, भक्ति का रसामृत, वात्सल्य के संयोग और वियोग के चित्र, शृंगार के संयोग और वियोग के भावचित्र तथा प्रकृति का अनूठा वर्णन पाठकों को भावविभोर कर देता है। राधा–कृष्ण के रूप वर्णन में जितने भी पद पाए जाते हैं, उनमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रचुरता के साथ प्रयोग किया गया है। इस रचना में विविध रसों का प्रयोग किया है गया है लेकिन मुख्य रस भक्ति–रस ही है।

भक्त शिरोमणि महात्मा सूरदास ने विष्णु के अवतार कृष्ण को आराध्य मानकर कृष्ण के बचपन से लेकर युवावस्था तक की नर और नारायण दोनों लीलाओं का वर्णन किया है। इस वर्णन में दैन्य, वात्सल्य, सख्य, माधुर्य भक्ति का आधार लिया गया है। श्री वल्लभाचार्य द्वारा पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पहले सूरदास ने जिस भक्ति पद्धति का अनुकरण किया था वह वैष्णव संप्रदाय में सख्य कोटि की अनन्य भक्ति थी। सूरदास की रचना में दो प्रकार के भक्ति विषयक पद मिलते हैं एक विनय–भक्ति संबंधित पद और दूसरे माधुर्य–भक्ति संबंधी पद।

विनय–भक्ति– वल्लभाचार्य द्वारा पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पहले जब सूरदास गऊघाट पर रहते थे, तब वे विनय–भक्ति और दास्य भाव के पद बनाकर अपनी भक्ति–भावना का परिचय दिया करते थे। विनय से तात्पर्य प्रार्थना करना अर्थात स्वयं को दीन हीन मानकर निर्गुण निराकार ईश्वर के सामने अपनी मुक्ति की प्रार्थना करना ही विनय–भक्ति है। विनय–भक्ति की साधना में वैष्णव संप्रदाय के अनुसार सात भूमिकाएँ निभानी पड़ती थी। जैसे- दीनता, मानमर्षता, भय–दर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारणा यह वे सात स्थितियाँ थी। इन सातों स्थितियों को ध्यान में रखकर सूरदास अपने पदों की रचना किया करते थे। विनय–भक्ति का आधार दास्य भाव है, जिसमें भक्त स्वयं को दास के रूप में दीन–हीन, तुच्छ मानकर अपने भगवान की उच्चता का वर्णन करता है। कबीर आदि निर्गुण भक्तों की तरह सूरदास भी पहले बहिर्साधना (सगुन सेवा, पूजा) की अपेक्षा आंतरिक साधना (निर्गुण ध्यान, उपासना) को अधिक उपयुक्त समझते थे। उनका निर्गुण ईश्वर इस सृष्टि के कण–कण में व्याप्त है।

अतः उनके सामने अपने दयनीय भाव को या विनय भाव को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं कि निर्गुण निराकार ईश्वर की स्थिति के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता क्योंकि वह गूंगे के मीठे फल के समान होते हैं। अर्थात जिस प्रकार गूंगा मीठे फल के रस का मन ही मन अनुभव तो करता है लेकिन उसे व्यक्त नहीं कर पाता। वही स्थिति निर्गुण ईश्वर को लेकर भक्तों की होती है। निर्गुण ईश्वर की प्राप्ति का आनंद उच्च कोटि का तथा निरंतर असीम संतोष देनेवाला होता है। निर्गुण ईश्वर मन, बाणी के द्वारा समझने के लिए कठिन होते हैं, जो उसे प्राप्त करता है वही जान सकता है। सूरदास कहते हैं कि ऐसे निर्गुण ईश्वर के रुप, गुण, आकार रहित होने के कारण मेरा मन निरालंब की तरह दौड़ते रहता है। निर्गुण ईश्वर को प्राप्त करने की विधि कठिन समझकर ही सूरदास सगुण ईश्वर की भक्ति करने का निर्णय करते हैं और कृष्ण के सगुण लीला के पद गाने लगते हैं।

वात्सल्य–भक्ति : सूरदास को वात्सल्य भाव के चितेरे कहा जाता है। उन्होंने कृष्ण की बाल लीलाओं के वात्सल्य भरे चित्रों को संपूर्ण भावात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। अबोध शिशु और ममतामई माँ के पारस्परिक संबंधों का आधार वात्सल्य भाव होता है। सूरदास ने सर्वप्रथम कृष्ण के शिशु रूप का वर्णन किया है, जिसमें कृष्ण की विविध लीलाएं और उसके प्रति माँ यशोदा का वात्सल्य भरा हुआ दिखाई देता है। बालकृष्ण का रूठना, चांद को खिलौना समझकर मांगना, अपने घुटनों के बल चलना, बलराम के प्रति स्पर्धा का भाव तथा माखन चोरी जैसे विविध प्रसंगों में वात्सल्य भाव झलकने लगता है।

जब बालक कृष्ण माखन चोरी करता है और गोपियाँ उसकी शिकायत माँ यसोदा से करती हैं, तो माँ अपने हाथ में छड़ी लिए उसे डांटने लगती है, तब एक बाल - सुलभ मानसिकता की तरह कृष्ण अपनी झूठी सफाई माँ के सामने पेश करते हुए कहते हैं कि, मैया मैंने माखन नहीं खाया है। मेरे सभी सखाओं नें जानबूझकर मेरे मुख को माखन लगाया है। तू ही देख मेरे ये छोटे–छोटे हाथ ऊंचे सीखेंपर रखे हुए माखन तक कैसे पहुंच सकते हैं। यह कहते हुए उन्होंने माखन से भरे हाथ से अपना मुंह पोंछ लिया और अपने छोटे दोनों हाथ पीठ पीछे छिपा लिए हैं। यह सब देखकर और सुनकर माँ यशोदा का क्रोध चला जाता है और वह हंसते हुए बाल कृष्ण को गले लगाती है। सूरदास कहते हैं कि यह बाल विनोद निश्चित रूप से मन को मोहित करनेवाला, आनंदित करनेवाला और भक्तों का प्रताप दिखानेवाला है। सूरदास के अनुसार बालकृष्ण की इस बाल लीलाओं का यह सुख शिव और ब्रह्मा को भी मिलना कठिन है, वह यहाँ जसोदा को सहजता से मिल रहा है।

विरह भावना– कृष्ण के मथुरा गमन के पश्चात जसोदा तथा गोपियों का कृष्ण के प्रति विरह भाव सूरदास ने बड़े भावविभोर ढंग से चित्रित किया

है। गोपियों का कृष्ण के प्रति विरह भाव भ्रमरगीत के नाम से प्रसिद्ध है। जब गोपियों का विरहभरा संदेश सुनकर कृष्ण अपने सखा उद्धव को ब्रज जाकर गोपियों को यह समझाने के लिए कहते हैं कि तुम सगुण ईश्वर की अर्थात मेरी भक्ति छोड़कर निर्गुण ईश्वर की भक्ति करने का संदेश गोपियों को दो। इसके माध्यम से कृष्ण उद्धव को अप्रत्यक्ष रूप से अर्थात गोपियों के माध्यम से यह बताना भी चाहते हैं कि निर्गुण की अपेक्षा सगुण ईश्वर की भक्ति को ही गोपियाँ सरस मानती हैं। उद्धव की तुलना गोपियों ने भ्रमर से की है क्योंकि गोपियाँ दोनों में रंग और गुणों की दृष्टि से समानता देखती है। उद्धव निर्गुण ईश्वर के उपासक थे। कृष्ण की बात मानकर वे कृष्ण की विरह की आग में जलनेवाली गोपियों को समझाने के लिए गर्व के साथ ब्रज आते हैं और गोपियों को कृष्ण के प्रति प्रेम या भक्ति भाव छोड़कर अपने निर्गुण ईश्वर के प्रति भक्ति करने का उपदेश देते हैं लेकिन कृष्ण की विरहाग्नी में जलती गोपियों को उद्धव का निर्गुण उपदेश जचता नहीं।

उद्धव का उपदेश सुनकर गोपियाँ कृष्ण के प्रति अपने प्रेम–भाव और विरह वेदना को व्यक्त करती हुए कहती है कि, हे उद्धव ! हमारे पास कोई दस–बीस मन नहीं है। जो एक था वह भी कृष्ण के साथ मथुरा चला गया है तब हम तुम्हारे इस निर्गुण ब्रह्म की आराधना के लिए दूसरा मन कहाँ से लाएगी और उसकी भक्ति कैसी करेंगी। अतः यहाँ तुम्हारे निर्गुण ब्रह्मा की आराधना कौन करेगा ? वह कहती है कि हमारा प्रेम तो कृष्ण के प्रति समर्पित है। हमें तो लगता है कृष्ण के बिना हमारी इंद्रियाँ मानो सिथिल बन गई है और लगता है हमारा यह देह बिना सीर का रह गया है। इस शरीर में हमारी सांसे इस आशा से चल रही है कि एक न एक दिन हमारे सखा कृष्ण आकर हमसे मिलेंगे। उनके जाने से ऐसा लगता है कि हमारी यह आत्मा उनके बिना मानो करोड़ों वर्ष जी रही है। हे उद्धव ! तुम तो हमारे सुंदर–सलोने स्याम के सखा और सभी योग के समर्थक एवं ज्ञाता हो। सूरदास यहाँ गोपियों की विरह भावना बताते हुए कहते कि, हे उद्धव ! नंद के बेटे कृष्ण के बिना हम यहां नहीं रह सकती और उनके बिना इस संसार में हमारे लिए कोई दूसरा ईश्वर नहीं है। यह गोपियों की कृष्ण के प्रति भक्ति–भावना व्यक्त हुई है।

विनय भक्ति

अबिगत–गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूँगे मीठे फल कौ, रस अंतरगत ही भावै।
परम स्वाद सबही सु निरंतर, अमित तोष उपजावै।
मन–बानी कौ अगम–अगोचर, सो जानै जो पावै।
रूप–रेख–गुन–जाति जुगति–बिनु, निरालंब कित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहि तातै, सूर सगुन–पद गावै।।1।।

वात्सल्य–भक्ति

मैया मैं नहिं माखन खायो।
ख्याल परै ये सखा सबै मिलि, मेरै मुख लपटायौ।
देखी तुहीं सीकें पर भाजन, ऊँचौ धरि लटकायौ।
हौं जु कहत नान्हे कर, अपनै मैं कैसे करि पायौ।
मुख दधि पोंछि बुद्धि इक कीन्हीं, दोना पीठि दुरायौ।
डारि साँटि मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ।
बाल–विनोद–मोद मन मोह्यौ, भक्ति–प्रताप दिखायौ।
सूरदास जसुमति कौ यह सुख सिव बिरंचि नहिं पायौ।।2।।

विरह भावना

उधौ मन न भए दस बीस।
एक हुतौ सो गयौ स्याम सँग, को अवराधै ईस।।
इंद्री सिथिल भई केसव बिनु, ज्यौं देही बिनु सीस।
आसा लगि रहति तन स्वासा, जीवहि कोटि बरीस।।
तुम तौ सखा स्याम सुंदर के, सकल जोग के ईस।
सूर हमारै नँदनंदन बिनु, और नहीं जगदीश।।3।।